जुलाई 2021, मूल्य : 35 रूपए

पाखी

सृजन की उड़ान

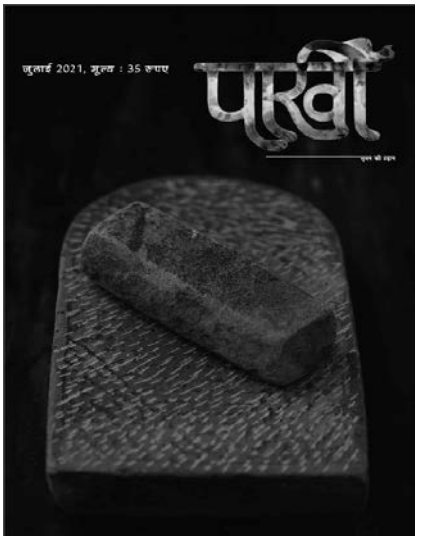

पाखी

सृजन की उड़ान

वर्ष : 13, अंक 10, जुलाई–2021

प्रकाशक :

इंडिपेंडेंट मीडिया इनीशिएटिव सोसायटी

बी–107, सेक्टर–63, नोएडा–201309

गौतमबुद्ध नगर, उत्तर प्रदेश

दूरभाष : 0120–4692200, फैक्स : 0120–2406445

editor@pakhi.in

subeditor@pakhi.in

pakhimagazine@gmail.com

www.facebook.com/pakhimagazine

Web portal : www.pakhi.in

प्रति	:	35.00 रु
वार्षिक, रजिस्टर्ड डाक सहित	:	1000.00 रु
आजीवन, रजिस्टर्ड डाक सहित	:	10000.00 रु

भुगतान **इंडिपेंडेंट मीडिया इनीशिएटिव सोसायटी** के नाम से किया जाए।

भुगतान ऑनलाइन या सीधे बैंक में भी जमा कर सकते हैं :

बैंक : CORPORATION BANK

खाता संख्या : 520101255568785

IFSC : CORP 0000501

बैंक शाखा : जी–28, सेक्टर–18, नोएडा–201301, उत्तर प्रदेश

सर्वाधिकार सुरक्षित

प्रकाशित सामग्री के उपयोग के लिए लेखक और प्रकाशक की अनुमति आवश्यक है। प्रकाशित रचनाओं के विचार से प्रकाशक का सहमत होना आवश्यक नहीं। समस्त विवाद दिल्ली न्यायालय के अंतर्गत विचारणीय। स्वामित्व इंडिपेंडेंट मीडिया इनीशिएटिव सोसायटी के लिए प्रकाशक, मुद्रक नारायण सिंह राणा द्वारा चार दिशाएं प्रिन्टर्स प्रा.लि. जी–39, नोएडा, से मुद्रित एवं बी–107, सेक्टर–63, नोएडा से प्रकाशित।

सम्पादक

अपूर्व जोशी

सहायक सम्पादक

शोभा अक्षर

व्यवस्थापक

अमित कुमार

उप सम्पादक

मनोज चौधरी

रेखा चित्र

गूगल से

अनुक्रमणिका

संपादकीय/अपूर्व जोशी

#सिलबट्टा और स्त्री-विमर्श-1 3

खंड-1 कहानियां

गिलहरी और समुद्र	: मुकुल जोशी	6
सांझ का सूरज	: राजनारायण बोहरे	14
काश, तुम समझ पाते	: डॉ. पूरन सिंह	18
लाल ईंट	: अश्विनी रुद्र	24
एक सूर्यास्त का ब्योरा	: सुशांत सुप्रिय	29

खंड-2 कविताएं/गजल

हमारा समय...	: प्रांजल राय	34
तथागत	: यशवंत कुमार	37
आदमखोर	: प्रखर पांडेय	40
अमलतास!	: स्वाति अग्रवाल सिंह	41
रंग भी रोते हैं	: दीपा मिश्रा	42

खंड-3 उपन्यास/साक्षात्कार/लेख/आलेख

रम्यभूमि	: भवेंद्र नाथ सैकिया	44
साक्षात्कार	: विभूति नारायण राय से हारून खान	52
लोकप्रियता के शिखर...	: विजय विश्वास	61
पितृसत्तात्मक समाज...	: डॉ. भारती अग्रवाल	69

खंड-4 स्थाई स्तंभ...

विज्ञान शिक्षा...	: प्रेमपाल शर्मा	74
ये सात साल	: विनोद अग्निहोत्री	77
32 साल का सफर	: कृष्ण बिहारी	82

खंड-5 मूल्यांकन/पुस्तकें पहुंची/खबरनामा

युवा वर्ग की महत्त्वाकांक्षा	: डॉ. कुमारी उर्वशी	87
रुहानी प्रेम की दास्तान	: भावना शेखर	91
धैर्य और साहस...	: अनिल अग्निहोत्री	93
खबरनामा	: मनोज चौधरी	96
पुस्तकें पहुंची	: शोभा अक्षर	51/90

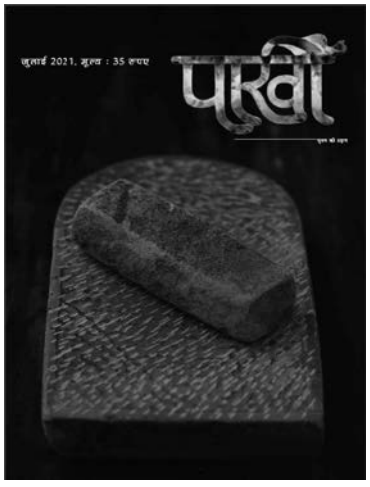

आवरण पृष्ठ :

जनार्दन कुमार सिंह

#सिलबट्टा और स्त्री-विमर्श-1

स्त्री और पुरुष के मध्य भेद प्रकृति की देन है तो जाहिर है शरीर की संरचना का असर दोनों के सोचने-समझने के तरीकों पर भी पड़ता है। स्त्री के भीतर कई ऐसे हारमोन्स हैं जिनसे पुरुष वंचित है। यह स्त्री की निजी संपदा है। यह संपदा उसे उन अनुभवों से गुजारती है जिन्हें पुरुष समझ ही नहीं सकता। चाहे गर्भधारण की क्षमता हो, मासिक धर्म हो या फिर गर्भपात, केवल स्त्री डोमेन का हिस्सा है। पुरुष ने इसी संपदा का दोहन अपने वर्चस्व को स्थापित करने के लिए किया। समाज नामक सामाजिक घटना के जन्मकाल से ही स्त्री की इस संपदा को उसके ही खिलाफ औजार बनाने का षड्यंत्र शुरू हुआ। वर्ण व्यवस्था के प्रर्वतकों ने अपनी श्रेष्ठता बनाए रखने के लिए इस षड्यंत्र को खूबसूरत बना डाला। स्त्री को 'मां', 'देवी', 'जननी' आदि अलंकरणों से सुशोभित कर उसे इतने बंधनों में जकड़ डाला कि वह उनसे सदियों तक दबी रह गई। पुरुष प्रधानता का यह काला सच है जिसके चलते आधी आबादी को जिबह किया जाता रहा है। सच का लेकिन दूसरा पहलू भी है। इन्हीं अलंकरणों को स्त्री सदियों से अपना हथियार बना उनका उपयोग अपने हितों की पूर्ति के लिए करती रही है।

इन दिनों #सिलबट्टा आभासी संसार में छाया हुआ है। इसके बहाने एक और स्त्री-विमर्श चल रहा है। हिंदी में चलने वाले नाना प्रकार के विमर्शों में आक्रामकता ज्यादा, वैचारिकी कमतर रहने की परंपरा है। पहले फिर भी वैचारिकी ऐसे विमर्शों में रहती थी, संपादक नामक संस्था के चलते, अब सोशल मीडिया ने 'फ्री फॉर ऑल' का जो प्लेटफार्म उपलब्ध कराया है, संपादक-संपादन अर्थहीन हो चला है। नतीजा वैचारिकता अपने न्यूनतम को पा चुकी है, #सिलबट्टा प्रकरण इसका ताजातरीन उदाहरण है जहां एक सामान्य-सी पोस्ट जो हमारी रसोई के परंपरागत आभूषण को लेकर लिखी गई, को लेकर हंगामा बरपा दिया गया है। स्त्री दमन, स्त्री दोहन, स्त्री प्रताड़ना-यातना आदि-आदि एक बार फिर से इस सिलबट्टे के बहाने सतही बहस में तब्दील हो गया है। असल पर बात नदारत है। बहस स्त्री-पुरुष के संबंधों को लेकर यदि मानीखेज करना लक्ष्य हो तो उसका कोई अर्थ है अन्यथा घिसी-पीटी बातें, घिसे-पिटे तर्क-कुतर्क तो, हिंदी में विशेषकर, दशकों से चले ही आ रहे हैं। ईमानदार विमर्श तभी संभव है जब स्त्री अपनी देह को लेकर अपराध बोध का बंधन तोड़ खुलकर उन विषयों पर बातचीत करने का साहस दिखाए जो उसे पुरुष के बरअक्स, पुरुष प्रधान समाज में दोयम दर्जे का साबित अनादिकाल से करते आए हैं। उदाहरण के लिए स्त्री-विमर्श का शारीरिक शोषण-उत्पीड़न तक सिमटा रहना है। इससे कहीं ज्यादा महत्वपूर्ण है उस मानसिक शोषण पर विर्मश करना जिसके चलते हमारे समाज में स्त्री के मन-मस्तिक की इस हद तक कंडीशनिंग कर दी गई है कि वह जन्मजात खुद को पुरुष से कमजोर, दयनीय मान लेती है। और जब वह कमतरी की इस कंडीशनिंग से विद्रोह करने लायक हो जाती है तब भी इससे मुक्ति नहीं पा पाती, चालाकी से इन्हें ही अपना हथियार बना अपनी 'आजादी' को पाने में जुट जाती है। इसे लेखिकाओं के लेखन जरिए समझा जा सकता है। स्त्री-विमर्श ने कइयों को 'क्रांतिकारी' लेखक का स्थान दिलाया जरूर है लेकिन ऐसे लेखन में उनकी जीवन यात्रा के कठिन पड़ाव, निजी संघर्ष तो जरूर हैं, विमर्श के नाम पर शोषण-उत्पीड़न की दांस्ता अधिक, आत्म विश्लेषण शून्य है। नतीजा वैचारिकी का अभाव और सच को छिपाने का द्वंद्व ऐसे लेखन का सार है। एक तरफ ऐसा लेखन, ऐसा विमर्श आधी दुनिया को बराबरी का दर्जा दिए जाने की वकालत करता है तो दूसरी तरफ उस पहलू पर खुलकर बात करने का साहस करने से कतराता है जो इस विमर्श के मूल में है। मूल में है स्त्री का शरीर, उसकी देह, जिस पर बहुत ही कम लेखिकाओं ने खुलकर कुछ लिखा है, ईमानदारी के साथ लिखने का साहस किया है। बराबरी का दर्जा चाहने की छटपटाहट तब तक कोई रंग नहीं ला सकती जब तक इस मूल पर खुली चर्चा बहस न हो। कृष्णा सोबती, मैत्रेयी पुष्पा, रमणिका गुप्ता जैसे चंद अपवाद जरूर हैं जिन्होंने इस संवेदनशील पहलू पर लिखने का, अपनी आप-बीती को कागज पर उतारने का साहस किया, बाकी सब वीरांगनाएं

अपने यहां ग्लोबलाइजेशन के दौर में भी सेक्स पर चर्चा एक अपराध सरीखा ही है। ऐसा तब जबकि खुली बाजार व्यवस्था के चलते सेक्स को भी बंधनों ने आजाद कराने में बड़ी भूमिका निभाई है। जिसे कभी 'गुप्त ज्ञान' कह पुकारा जाता है, जिस पर चर्चा वर्जित थी, अब 'गुप्त' नहीं रहा। इसकी 'गोपनीयता' भंग होने से सबसे ज्यादा व्यथित वे हुए हैं जिन्हें स्त्री को देवी मानने, उसको पूज्य बनाए रखने में ही अपनी सत्ता सुरक्षित नजर आती है। स्त्री पर अपना वर्चस्व बनाए रखने के लिए यौन चर्चा पर रोक ऐसों की नजर में बेहद आवश्यक आज भी है।

इससे बचती रही हैं। उनका लेखन, उनके तेवर, केवल और केवल स्त्री पर सदियों से ढहाए जा रहे अत्याचारों के ईद-गिर्द सिमटा रहा है। सच कटु तो होता ही है उसको कहने के खासे दुष्परिणाम सामने आने के खतरे बने रहते हैं। सच तो लेकिन सच है। किसी न किसी को तो उस पर लिखना ही पड़ेगा। स्त्री और पुरुष के मध्य भेद प्रकृति की देन है तो जाहिर है शरीर की संरचना का असर दोनों के सोचने-समझने के तरीकों पर भी पड़ता है। स्त्री के भीतर कई ऐसे हारमोन्स हैं जिनसे पुरुष वंचित है। यह स्त्री की निजी संपदा है। यह सम्पदा उसे उन अनुभवों से गुजारती है जिन्हें पुरुष समझ ही नहीं सकता। चाहे गर्भधारण की क्षमता हो, मासिक धर्म हो या फिर गर्भपात, केवल स्त्री डोमेन का हिस्सा है। पुरुष ने इसी संपदा का दोहन अपने वर्चस्व को स्थापित करने के लिए किया। समाज नामक सामाजिक घटना के जन्मकाल से ही स्त्री की इस सम्पदा को उसके ही खिलाफ औजार बनाने का षड्यंत्र शुरू हुआ। वर्ण व्यवस्था के प्रर्वतकों ने अपनी श्रेष्ठता बनाए रखने के लिए इस षड्यंत्र को खूबसूरत बना डाला। स्त्री को 'मां', 'देवी', 'जननी' आदि अलंकरणों से सुशोभित कर उसे इतने बंधनों में जकड़ डाला कि वह उनसे सदियों तक दबी रह गई। पुरुष प्रधानता का यह काला सच है जिसके चलते आधी आबादी को जिबह किया जाता रहा है। सच का लेकिन दूसरा पहलू भी है। इन्हीं अलंकरणों को स्त्री सदियों से अपना हथियार बना उनका उपयोग अपने हितों की पूर्ति के लिए करती रही है। देह संरचना के स्तर पर अपनी बात ईमानदारी से कह पाना निश्चित ही जोखिम भरा है। लेकिन इस जोखिम को उठाए बगैर स्त्री मुक्ति, स्त्री संघर्ष, स्त्री उत्पीड़न आदि पर बात करना सच से कतरा कर निकल जाने समान है। पुरुष प्रधान समाज ने गहरी चाल चली। स्त्री का महिमामंडन कर उसे घर की चहारदीवारी तक कैद कर डाला। उसे एक तरफ देवी, जननी, मां आदि से महिमार्मंडित किया तो दूसरी तरफ इनके भार तले दब कर वह 'बेचारी' बन कर रह गई। फिर उसने इस चहारदीवारी के भीतर अपना एक संसार निर्मित कर डाला। ऐसा संसार जहां वह अपने हिसाब से, अपने तरीकों से चौसर बिछाती, चालें चलती। इस चौसर में उसकी देह एक बड़ा हथियार थी। फिर जैसे-जैसे उसकी दुनिया का विस्तार होता गया, उसकी चालें भी बदली, देह लेकिन एक हथियार तौर उसके पास हमेशा उपलब्ध रही। इस हथियार पर ईमानदार चर्चा का न होना, पुरुष द्वारा अपने वर्चस्व को बनाए रखने की नीयत से स्त्री का महिमामंडन करना और स्त्री द्वारा इस महिमामंडन का उपयोग अपनी सुविधानुसार करते रहना, खुद में एक अलग प्रकार का स्त्री-विमर्श है। इस पर, इसके अनछुए पहलुओं पर स्त्री यदि साफगोई से चर्चा करने का साहस करे तो #सिलबट्टा सरीखे प्रसंगों की कोई प्रासंगिकता नहीं रहेगी। साथ ही इस प्रकार का विमर्श स्त्री को उस अपराध बोध से बाहर निकालेगा जो उसको जन्म के साथ ही अपने आगोश में ले लेता है। नैतिक-अनैतिक के सभी अध्याय उसके लिए ही चूंकि गढ़े गए इसलिए स्त्री योनी में जन्मने के साथ ही नैतिक-अनैतिक का भंवरजाल उसके चारों तरह कस दिया जाता है जिसका सीधा प्रभाव उसके मनोविज्ञान पर पड़ता है। यही वह मनोविज्ञान है जो स्त्री को बेहद जटिल बना देता है। जरूरत इस मनोविज्ञान के भंवरजाल से बाहर आने की है ताकि सही अर्थों में स्त्री-पुरुष का भेद समाप्त हो सके, आधी आबादी को दूसरी आधी आबादी के साथ बराबरी का स्थान मिल सके। यह तभी संभव है जब कथित नैतिकताओं और अनैतिकताओं का खुला प्रतिरोध स्त्री-विमर्श की मुख्यधारा बने। अन्यथा #सिलबट्टा सरीखे प्रकरण में उलझ सारा विमर्श बेमानी भर रह जाएगा। यूरोपीय देशों में इसको लेकर स्पष्टता अर्सा पहले आ चुकी है। वहां महिलाएं खुलकर उस सब की चर्चा करती हैं, लिखती हैं, अपने अनुभव साझा करती हैं जिन्हें आज भी हमारे समाज में वर्जनीय अनुभव समझा जाता है। बड़ी त्रासदी हमारी भाषा में भी है। अंग्रेजी या फ्रेंच में जिन बातों की चर्चा बगैर नैतिक-अनैतिक मापदंडों के होती है, हमारे यहां वह सब कुछ अश्लील हो जाता है। अमेरिकी नाटककार ईव एन्सलर का नाटक 'द वेजाइना मनोलॉगस्' (TheVagina Monologues) अंग्रेजी में ही संभव है। अपने यहां लियोनार्डो द विंची की प्रसिद्ध कृति भी स्त्री देह के दंश का शिकार बना दी जाती है। (संदर्भ 'पाखी' अप्रैल-2019 अंक का आवरण) पुरुष प्रधान समाज इसका विरोध करे तो उसके कारण समझ में आते हैं। वह अपने वर्चस्व के समाप्त होने से भयभीत हो ऐसा करता है, स्त्री अपने भयग्रस्त मनोविज्ञान के चलते तो ऐसा करती ही है, वह अपनी देह